उच्च शिक्षा में कैसे पिछड़े उत्तरी राज्य

गुणवत्तापूर्ण उच्च शिक्षा के लिहाज से देश के दक्षिणी व उत्तरी राज्यों में जो अंतर दिख रहा है, वह संघीय ढांचे और क्षेत्रीय संतुलन की दृष्टि से चिंताजनक है।

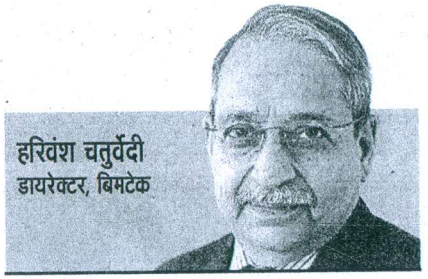

हरिवंश चतुर्वेदी
डायरेक्टर, बिमटेक

तीन अप्रैल, 2017 को केंद्रीय मानव संसाधन मंत्री प्रकाश जावड़ेकर ने देश के शीर्षस्थ उच्च शिक्षा संस्थानों और विश्वविद्यालयों की जो सूची जारी की, उसमें उत्तर और दक्षिण भारत के बीच जो बड़ा फर्क नजर आया, वह चौंकाने वाला है। नेशनल इंस्टीट्यूशनल रैंकिंग फ्रेमवर्क यानी एनआईआरएफ-2017 के अंतर्गत देश के शीर्ष 100 विश्वविद्यालयों व कॉलेजों, शीर्ष 100 इंजीनियरिंग कॉलेजों और 50 श्रेष्ठ प्रबंध संस्थानों व फार्मेसी कॉलेजों की सूची जारी की गई है। इस रैंकिंग के लिए 3,535 कॉलेजों व 685 विश्वविद्यालयों ने आवेदन किया था।

राष्ट्रीय स्तर के इस सर्वेक्षण में यह तथ्य जाहिर हुआ है कि उच्च शिक्षा की गुणवत्ता को सुधारने में दक्षिणी राज्यों, जैसे तमिलनाडु, केरल, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, तेलंगाना और पुडुचेरी ने बाजी मारी है। शीर्ष 100 विश्वविद्यालयों, सामान्य कॉलेजों व इंजीनियरिंग संस्थानों की सूची में इन छह राज्यों को क्रमशः 48 प्रतिशत, 67 प्रतिशत और 40 प्रतिशत स्थान मिले हैं। अकेले तमिलनाडु को विश्वविद्यालयों की रैंकिंग में 24, कॉलेजों की रैंकिंग में 37 और इंजीनियरिंग की सूची में 22 स्थान मिले हैं। सिर्फ प्रबंध संस्थानों की शीर्ष 50 की सूची में उत्तर भारत 17 स्थान लेकर दक्षिण से आगे है, जिसे 10 स्थान मिले हैं।

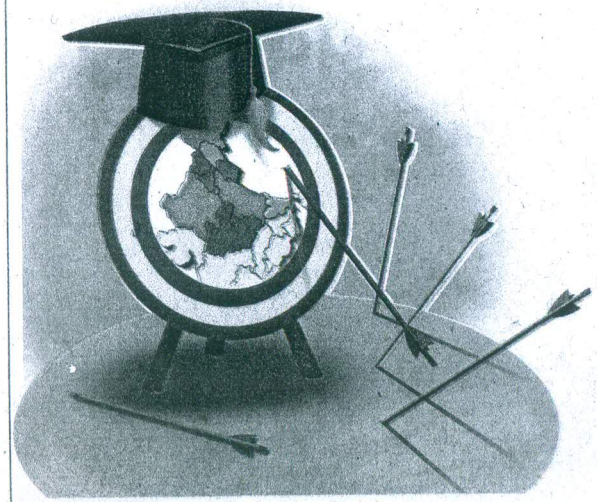

चित्रांकन : सुदर्शन मल्लिक

एनआईआरएफ-2017 की रैंकिंग में हिंदीभाषी उत्तरी राज्यों की जो दयनीय स्थिति दिखाई दी है, उसमें उत्तर प्रदेश का प्रदर्शन बहुत खराब दिखता है। उत्तर प्रदेश में 63 विश्वविद्यालय और 6,026 कॉलेज हैं, किंतु सिर्फ सात विश्वविद्यालयों और छह इंजीनियरिंग कॉलेजों को इस रैंकिंग में स्थान मिला है। राजस्थान के चार विश्वविद्यालय और तीन इंजीनियरिंग कॉलेज इस रैंकिंग में शामिल हैं। मध्य प्रदेश के दो इंजीनियरिंग कॉलेजों और दो प्रबंध संस्थानों को इसमें स्थान मिला है, जबकि हरियाणा का सिर्फ एक विश्वविद्यालय और तीन इंजीनियरिंग कॉलेज इस सूची में जगह बना पाए। बिहार का तो कोई भी विश्वविद्यालय और कॉलेज रैंकिंग सूची में नहीं आ पाया।

उत्तर और दक्षिण के राज्यों के बीच उच्च शिक्षा की गुणवत्ता के क्षेत्र में जो स्पष्ट विभाजन दिखाई दे रहा है, वह हमारे संघीय ढांचे, क्षेत्रीय संतुलन और मानव विकास की दृष्टि से एक चिंताजनक प्रवृत्ति है। मानव संसाधन मंत्रालय, उच्च शिक्षा की नियामक संस्थाओं- यूजीसी और एआईसीटीई समेत हिंदीभाषी राज्यों की सरकारों को यह सोचने की जरूरत है कि यहां के विश्वविद्यालय और कॉलेज लगातार गिरावट की ओर क्यों बढ़ रहे हैं? 50 वर्ष पूर्व इन्हीं प्रदेशों के इलाहाबाद विश्वविद्यालय, बीएचयू, एएमयू, पटना विश्वविद्यालय, सागर विश्वविद्यालय, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, राजस्थान विश्वविद्यालय और पंजाब विश्वविद्यालय की ख्याति पूरे देश में थी। आखिर क्या कारण हैं कि उच्च शिक्षा के ये चमकते हुए शिखर आज धूमिल हो गए हैं?

दरअसल, उत्तरी व दक्षिणी राज्यों की उच्च शिक्षा की गुणवत्ता में उदारीकरण के बाद के दौर में बहुत तेजी से अंतर बढ़ा है। तामिलनाडु, कर्नाटक, केरल व आंध्र प्रदेश की सरकारों ने उदारीकरण के दौर में सड़क, परिवहन, विद्युत, संचार, शिक्षा आदि के मूलभूत ढांचे को मजबूत और कार्यकुशल बनाने पर विशेष ध्यान दिया। इन राज्यों का राजनीतिक नेतृत्व औद्योगिक जगत और विनियोगकर्ताओं को आकर्षित करने में सफल रहा।

उत्तर व दक्षिणी राज्यों के बीच बढ़ती इस खाई का संबंध उस सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश से भी है, जो देश के दोनों भू-भागों में मिलता-जुलता दिखते हुए भी काफी भिन्न है। वैसे तो पूरे देश में मूल्यों का संकट गहरा हुआ है, पर उच्च शिक्षा के प्रति विद्यार्थियों, शिक्षकों और अभिभावकों का रवैया उत्तर व दक्षिणी राज्यों में भिन्न दिखता है। दक्षिण भारत के विद्यार्थियों में गणित, विज्ञान, इंजीनियरिंग, प्रबंध व मेडिकल जैसे पेशेवर पाठ्यक्रमों के प्रति उत्तर भारत की अपेक्षा ज्यादा रुचि देखी गई। देश में सबसे पहला प्राइवेट मेडिकल कॉलेज डॉक्टर टीएमए पई ने 1953 में मनीपाल में स्थापित किया। कर्नाटक ने सबसे पहले इंजीनियरिंग व मेडिकल कॉलेजों को निजी क्षेत्र में स्थापित करने की पहल 1960 के दशक में शुरू की, जिसे बाद में तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश और महाराष्ट्र जैसे राज्यों ने व्यापक रूप से अपनाया। वर्ष 2006 में दक्षिणी राज्यों के इंजीनियरिंग कॉलेजों के पास पूरे देश की कुल सीटों का 53 प्रतिशत हिस्सा था, जबकि उत्तरी राज्य सिर्फ 16 फीसदी सीटों से काम चला रहे थे।

उत्तर भारत के राज्यों में उच्च शिक्षा की लगातार अधोगति के कुछ प्रमुख कारणों का सीधा संबंध राजनीतिक बदलावों से है। 1977 के बाद उत्तर भारत में जनता पार्टी और दक्षिण भारत में कांग्रेस की सरकारें बनीं। यह वह दौर था, जब उत्तर भारत के स्कूलों और कैंपसों में दादागीरी, हिंसा और परीक्षाओं में खुली नकल की प्रवृत्तियों को पोषित किया गया। इसके विपरीत दक्षिण भारत के स्कूल-कॉलेजों में पढ़ाई-लिखाई चलती रही और उसमें राजनीतिज्ञों ने अवरोध पैदा नहीं किए।

उत्तरी राज्यों का यह भी दुर्भाग्य रहा है कि मंडल और कमंडल के दौर में राज्य सरकारें सुशासन नहीं दे पाईं। शिक्षा उनकी प्राथमिकताओं में नहीं थी। ज्यादातर सरकारों ने स्कूली शिक्षा व उच्च शिक्षा के लिए उतने ही वित्तीय साधन आबंटित किए, जो शिक्षकों व स्टाफ के वेतन भुगतान के लिए जरूरी थे। यह हालत पिछले कुछ वर्षों में उत्तर भारत के सभी विश्वविद्यालयों में गंभीर वित्तीय संकट को जन्म दे चुकी है। उत्तरी राज्यों के विश्वविद्यालयों पर मंडरा रहे गंभीर वित्तीय संकट का एक ज्वलंत उदाहरण पंजाब विश्वविद्यालय है, जिसे 2014 के टाइम्स हायर एजूकेशन की विश्व स्तरीय रैंकिंग में सभी आईआईएम और आईआईटी से बेहतर माना गया था। चालू वर्ष (2017-18) में पंजाब विश्वविद्यालय के कुल खर्च 516 करोड़ रुपये हैं और सभी स्रोतों से कुल आय 272 करोड़। जब इस विश्वविद्यालय ने 244 करोड़ के घाटे की पूर्ति के लिए फीस बढ़ाई, तो पुलिस और छात्रों के बीच हिंसा देखने को मिली। क्या केंद्र और पंजाब सरकार की इसमें कोई जिम्मेदारी नहीं बनती?

उदारीकरण के विगत 25 वर्षों में यह भी देखा गया है कि उत्तरी राज्यों में कुलपतियों और प्राचार्यों के चयन में भ्रष्टाचार, पक्षपात और राजनीतिक हस्तक्षेप सभी सीमाएं पार कर गया। इन राज्यों की सरकारों को सोचना होगा कि अगर उच्च शिक्षा में मौजूदा गिरावट को रोका नहीं गया, तो यहां के कॉलेजों व विश्वविद्यालयों को भविष्य में और बुरे दिन देखने पड़ेंगे।

(ये लेखक के अपने विचार हैं)